# ८. धवलासे पूर्व के टीकाकार

ऊपर कह आये हैं कि जयधवलाकी प्रशस्तिकेअनुसार वीरसेनाचार्यने अपनी टीकाव्दारा सिध्दांत ग्रंथोकी बहुत पुष्टि की, जिससे वे अपनेसे पूर्वकेसमस्त पुस्तकशिष्यकोंसे बढ गये २। (पुस्तकानां चिरत्रानां गुरूत्वमिह कुर्वता। येनातिशयिता: पूर्वे सूर्वे स्तकशिष्यका:।।२४।। जयधवला प्रशस्ति. ) इससे प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या वीरसेनसे भी पूर्व इस सिध्दांत ग्रंथकी अन्य टीकाएं लिखी गई थीं? इन्द्रनन्दिने अपने श्रृतावतारमें दोंनो सिध्दांत ग्रंथोपर लिखी गई अनेक टीकाओंका उल्लेख किया है जिसके आधारसे षट्खण्डागमकी धवलासे पूर्व रची गई टीकाओंका यहां परिचय दिया जाता है।

कर्मप्राभृत (षट्खण्डागम) और कषायप्राभूत इन दोनों सिध्दांतोंका ज्ञान गुरूपरिपाटीसे कुन्दकुन्दपुरके पद्मनन्दि मुनिको प्राप्त हुआ और उन्होंने सबसे पहले षट्खण्डागमके प्रथम तीन खण्डोंपर बारह हजार श्लोक प्रमाण एक टीका ग्रन्थ रचा जिसका नाम परिकर्म था २ (पुस्तकानां चिरत्रानां गुरूत्वमिह कुर्वता। येनातिशयिता: पूर्वे सर्वे स्तकशिष्यका: ।।२४।।( जयधवलाप्रशस्ति.)) हम ऊपर बतला आये हैं कि इन्द्रनन्दिका कुन्दकुन्द कुन्दकुन्दपूरके पद्मनन्दिसे हमारे उन्हीं प्रात:स्मरणीय कुन्दकुन्दाचार्य का ही अभिप्राय हो सकता है जो दिगम्बर जैन संप्रदायमें सबसे बडे आचार्य गिने गये हैं और जिनके प्रवचनसार, समयसार आदि ग्रंथ जैन सिध्दांतके सर्वोपरि प्रमाण माने जाते हैं। दुर्भाग्यत: उनकी बनायी यह टीका प्राप्य नहीं हैं और न किन्हीं अन्य लेखकोंने उसके कोई उल्लेखादि दिये। किंतु स्वंय धवला टीकामें परिकर्म नामके ग्रन्थका अनेकबार उल्लेख आया है। धवलाकारने कहीं 'परिकर्म' से उद्धृत किया है३ ('त्ति परियग्मे वुत्तं' ( धवला अ. १४१ ) 'परियम्मम्मि वुत्तं' ( धवला अ. ६७८ ) ),कहीं कहा है कि यह बात ' परिकर्म के ' कथनपरसे जानी जाती है४ (परियम्मवयणादो णव्वदे (धवला अ.१६७) इदि परियम्मवयणादो (धवला अ.२०३) और कहीं अपने कथनका परिकर्मके कथनसे विरोध आनेकी

शंका उठाकर उसका समाधान किया है५ (,ण च परियम्मेण सह विरोहो (धवला अ.२०३) परियम्मवयणेण सह एदं सुत्तं विरू ज्झदि त्तिण(धवला अ. ३०४) ) ।

एक स्थान पर उन्होंने परिकर्मके कथनके विरूध्द अपने कथनकी पुष्टि भी की है और कहा है कि उन्हींके व्याख्यानको ग्रहण करना चाहिए, परिकर्मके व्याख्यानको नहीं, क्योंकी, वह व्याख्यान सूत्रके विरूध्द जाता है६ (परियम्मेण एदं वक्खाणं किण्ण विरू ज्झदे? ,एदेण सह विरूज्झदे,किंतु सुत्तेण सह ण विरूज्झदे। तेण एदस्स वक्खाणस्स ग्रहणं कायव्वं,ण परियम्मस्स तस्स सुत्तविरूज्झत्तादो। (धवला अ.२५९) ) इससे स्पष्ट ही ज्ञात होता है कि 'परिकर्म' इसी षट्खण्डागमकी टीका थी। इसकी पुष्टि एक और उल्लेखसे होती है जहां ऐसा ही विरोध उत्पन्न होनेपर कहा है कि यह कथन उस प्रकार नहीं है, क्योंकि, स्वयं 'परिकर्मकी' प्रवृत्ती इसी सूत्रके बलसे हुई है७; (परियम्मादो असंखेज्जाओ जोयणकोडीओ सेढीए पमाणमवगदमिदि चे ण,एदस्स सुत्तस्स बलेण 'परियम्मपवुत्तीदो' (धवल अ.पृ.१८६))। इन उल्लखोंसे इस बातमें कोई सन्देह नहीं रहता कि 'परिकर्म' नामका ग्रंथ था, उसमें इसी आगमका व्याख्यान था और वह ग्रंथ वीरसेनाचार्यके सन्मुख विद्यमान था। एक उल्लेखद्वारा धवलाकारने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि 'परिकर्म' ग्रंथको सभी आचार्य प्रमाण मानते थे८। ('सथलाइरियसम्मदपरियम्मसिध्दत्तादो' । (धवला अ.पृ.५४२))

उक्त उल्लेखोंमेंसे प्राय: सभीका सम्बंध षट्खण्डागमके प्रथम तीन खण्डोंके विषयसे ही है जिससे इन्द्रनन्दिके इस कथनकी पुष्टि होती है कि वह ग्रंथ प्रथम तीन खण्डोंपर ही लिखा गया था। उक्त उल्लेखोंपरसे 'परिकर्म' कर्ताके नामादिकका कुछ पता नहीं लगता। किन्तु ऐसी भी कोई बात उनमें नहीं है कि जिससे वह ग्रंथ कुन्दकुन्दकृत न कहा जा सके । धवलाकाराने कुन्दकुन्दके अन्य सुविख्यात ग्रंथोंका भी कर्ताका नाम दिये बिना ही उल्लेख किया है। यथा, वुत्तं च पंचत्थिपाहुडे (धवला अ.पृ. २८९)

इन्द्रनन्दिने जो इस टीकाको सर्व प्रथम बतलाया है और धवलाकारने उसे सर्व-आचार्य-सम्मत कहा है, तथा उसका स्थान स्थानपर उल्लेख किया है, इससे इस ग्रंथके कुन्दकुन्दाचार्यकृत माननेमें कोई आपत्ति नहीं दिखती। यद्यपि इन्द्रनन्दिने यह नहीं कहा है कि यह ग्रंथ किस भाषामें

लिखा गया था, किन्तु उसके जो 'अवतरण' धवलामें आये हैं वे सब प्राकृतमें ही हैं, जिससे जान पडता है कि वह टीका प्राकृतमें ही लिखी गई होगी। कुन्दकुन्दकेअन्य सब ग्रंथ भी प्राकृतमें ही हैं।

धवलामें परिकर्मका एक उल्लेख इस प्रकारसे आया है-

" 'अपदेसं णेव इंदिए गेज्झं' इदि परमाणूणं णिरवयवत्तं परियम्मे वुत्तमिदि" (ध.१११०)इसका कुन्दकुन्दकेनियमसारकी इस गाथासे मिलान कीजिये--

अत्तादि अत्तमज्झं अत्तंत्तं णेव इंदिए गेज्झं ।
अविभागी जं दव्वं परमाणू तं विआणाहि ।।२६।।

इन दोनों अवतरणोकें मिलानसे स्पष्ट है कि धवलामें आया हुआ उल्लेख नियमसारसे भिन्न है, फिर भी दोनोंकी रचनामें एक ही हाथ सुस्पष्टरूपसे दिखाई देता है। इन सब प्रमाणोंसे कुन्दकुन्दकृत परिकर्म केअस्तित्वमें बहुत कम सन्देह रह जाता है।

धवलाकाराने एक स्थानपर `परिकर्म`का सूत्र कह कर उल्लेख किया है। यथा-- `रूवाहियाणि त्ति परियम्मसुत्तेण सह विरूज्झ्इ` (धवला अ.पृ.१४३)। बहुधा वृत्तिरू प जो व्याख्या होती है उसे सूत्र भी कहते हैं। जयधवलामें यतिवृषभाचार्यको 'कषायप्राभृत' का 'वृत्तिसूत्रकर्ता' कहा है। यथा---

'सो वित्तिसुत्तकत्ता जइवसहो मे वरं देऊ' (जयध. मंगलचरण गा.८)

इससे जान पडता है कि परिकर्म नामक व्याख्यान वृत्तिरूप था। इन्द्रनन्द्रिने परिकर्मको ग्रंथ कहा है। वैजयन्ती कोषके अनुसार ग्रंथ वृत्तिका एक पर्याय-वाचक नाम है। यथा- `वृत्तिर्ग्रन्थजीवनयो:` (वृत्ति उसे कहते है जिसमे सूत्रोंका ही विवरण हो, शब्द रचना संक्षिप्त हो और फिर भी सूत्रकेसमस्त अर्थोका जिसमें संग्रह हो।) यथा..

'सुत्तस्सेव विवरणाए संखित्त-सद्द-रयणाए संगहिय-सुत्तासेसत्थाए वित्तसुत्त-ववएसादो।

(जयध. अ. ५२)

इन्द्रनन्दिने दुसरी जिस टीकाका उल्लेख किया है, वह शामकुंड नामक आचार्य-कृत थी। यह टीका छठवें खण्डको छोडकर प्रथम पांच खण्डोंपर तथा दूसरे सिध्दांतग्रंथ (कषायप्राभृत) पर भी थी। यह टीका पध्दति रूप थी। (वृत्तिसूत्रकेविषम-पदोंका भंजन अर्थात् विश्लेषणात्मक विवरणको पध्दती कहते है।) यथा--

वित्तिसुत्त-विसम-पयाभंजिए विवरणाए पड्ढइ-ववएसादो (जयध.पृ.५२)

इससे स्पष्ट है कि शामकुंडके सन्मुख कोई वृत्तिसूत्र रहे हैं जिनकी उन्होंने पध्दति लिखी। हम ऊपर कह ही आये हैं कि कुन्दकुन्दकृत परिकर्म संभवत: वृत्तिरूप ग्रंथ था। अत: शामकुंडने उसी वृत्तिपर और उधर कषायप्राभृतकी यतिवृषभाचार्यकृत वृत्तिपर अपनी पध्दती लिखी।

इस समस्त टीकाका परिमाण भी बारह हजार श्लोक था और उसकी भाषा प्राकृत संस्कृत और कानडी तीनों मिश्रित थी। यह टीका परिकर्मसे कितने ही काल पश्चात् लिखी गई थी१ (काले तत: कियत्यपि गते पुन : शामकुण्डसंज्ञेन। आचार्येण ज्ञात्वा द्विभेदमप्यागम: कात्स्न्र्यात् ।।१६२।। द्वादशगु णितसहस्त्रं ग्रन्थं सिध्दान्तयोरुभयो: । षष्ठेन विना खण्डेन पृथुमहाबन्धसंज्ञेन ।।१६३।। प्राकृतसंस्कृतकर्णाटभाषया पध्दति: परा रचिता ।। इन्द्र. श्रुतावतार.) इस टीकाके कोई उल्लेख आदि धवला व जयधवलामें अभीतक हमारे दृष्टिगोचर नहीं हुए।

३. चूडामणिकर्ता तुम्बुलूराचार्य

इन्द्रनन्दिद्वारा उल्लेखित तीसरी सिध्दान्तटीका तुम्बुलूर नामकेआचार्यव्दारा लिखी गई। ये आचार्य `तुम्बुलूर`नामके एक सुंदर ग्राममें रहते थें,इसीसे वे तुम्बुलूराचार्य कहलाये, जैसे कुण्डकुन्दपुरमें रहनेके कारण पद्मनन्दि आचार्यकी कुन्दकुन्द नामसे प्रसिध्दि हुई । इनका असली नाम क्या था यह ज्ञात नहीं होता। इन्होंने छठवें खण्डको छोड शेष दोनों सिध्दान्तोंपर एक बडी भारी व्याख्या लिखी, जिसका नाम 'चूडामणि' था और परिमाण चौरासी हजार। इस महती व्याख्याकी भाषा कनाडी थी। इसके अतिरिक्त उन्होने छठवें खंडपर सात हजार प्रमाण 'पञ्चिका' लिखी। इस प्रकार इनकी कुल रचनाका प्रमाण ९१ हजार श्लोक हो जाता है। इन रचनाओंका भी कोई उल्लेख धवला व जयधवलामें हमारे दृष्टिगोचर नहीं हुआ। किन्तु महाधवलका जो परिचय `धवलादिसिध्दान्त ग्रंथोंके प्रशस्तिसंग्रहमें दिया गया है उसमें पंचिकारूप विवरणका उल्लेख पाया जाता है। २(वीरवाणीविलास जैनसिध्दान्तभवनका प्रथम वार्षिक रिपोर्ट,१९३५)यथा--

वोच्छामि संतकम्मे पंचियरूवेण विवरण सुमहत्थ।।..पुणो तेहितो सेसट्ठारसणियोगद्दाराणि संतकम्मे सव्वाणि परूविदाणि। तो वि तस्सइगंभिरत्तादो अत्थविसमपदाणमत्थे थोरू ध्दयेण पंचिय-सरू वेण भणिस्सामो।

जान पडता है यही तुम्बुलूराचार्यकृत षष्ठम खंडकी वह पंचिका है जिसका इन्द्रनन्दिने उल्लेख किया है। यदि यह ठीक हो तो कहना पडेगा कि चूडामणि व्याख्याकी भाषा कानडी थी, किंन्तु इस पंचिकाको उन्होंने प्राकृतमें रचा था।

भट्टाकलंकदेवने अपने कर्णाटक शब्दानुशासनमें कनाडी भाषामें रचित 'चुडामणि' नामक तत्वार्थमहाशास्त्र व्याख्यानका उल्लेख किया है। यद्यपि वहां इसका प्रमाण ९६ हजार बतलाया है जो इन्द्रनन्दिके कथनसे अधिक है, तथापि उसका तात्पर्य इसी तुम्बुलूराचार्यकृत 'चूडामणि'से है ऐसा जान पडता है।१ (न चैषा (कर्णाटकी) भाषा शास्त्रानुपयोगिनी, तत्वार्थमहाशास्त्रव्याख्यानस्य षण्णवतिसहस्त्रग्रंथसंदर्भरूपस्य चुडामण्यभिधानस्य महाशास्त्रस्यान्येषां च शब्दागम-युक्त्यागम-परमागम-विषयाणां तथा काव्य नाटक कलाशास्त्र-विषयाणां च बहुनां ग्रन्थानामपि भाषाकृतानामुपलब्धमानत्वात्। (समन्तभद्र. पृ. २१८) ) इनके रचना-कालके विषयमें इन्द्रनन्दिने इतनाही कहा है कि शामकुंडसे कितने ही काल पश्चात् तुम्बुलूराचार्य हुए२। (तस्मादारात्पुनरपि काले गतवति कियत्यपि च ।अथ तुम्बुलूरनामाचार्योऽभूत्तुम्बुलूरद्ग्रमे। षष्ठेन विना खण्डेन सोऽपि सिध्दान्तयोरूभयो: ।।१६५।। चतुरधिकाशीतिसहस्त्रग्रन्थरचनया युक्ताम्। कर्णाटभाषयाऽकृत महतीं चुडामणि व्याख्याम् ।।१६६।। सप्तसहस्त्रग्रन्थां षष्ठ्स्य च पंचिकां पुनरकार्षीसत। इन्द्र. श्रुतावतार.)

४. समन्तभद्र स्वामीकृत टीका

तुम्बुलूराचार्यके पश्चात् कालान्तरमें समन्तभद्र स्वामी हुए, जिन्हें इन्द्रनन्दिने `ताकिकार्क' कहा है। उन्होंने दोनों सिध्दान्तोंका अध्ययन करके षट्खण्डागमके पांच खंडोंपर ४८ हजार श्लोकप्रमाण टीका रची। इस टीकाकी भाषा अत्यंत सुंदर और मृदुल संस्कृत थी३( कालान्तरे तत: पुनरासंध्यां पलरि (?) तार्किकार्कोभूत ।।१६७।। श्रीमान् समन्तभद्रस्वामीत्यय सोऽप्यधीत्य तं द्विविधम् । सिद्धान्तमत: षट्खण्डागमगतखण्डपञ्चकस्य पुन: ।।१६८।। अष्टौ चत्वारिंशत्सहस्त्रसद्ग्रन्थरचनया युक्ताम् । विरचितवानतिसुन्दरमृदुसंस्कृतभाषया टीकाम् ।।१६९।।इन्द्र. श्रुतावतार.) ।

यहां इन्द्रनन्द्रिका अभिप्राय निश्चयत: आप्तमीमांसादि सुप्रसिध्द ग्रंथोके रचयितासे ही है,जिन्हे अष्टसहस्त्रीके टिप्पणकारने भी `तार्क्किकार्क' कहा है। यथा--

तदेवं महाभागैस्ताकिकार्के रूपज्ञातां.... आप्तमीमांसाम्... (अष्ट्स. पृ. १ टिप्पण)

धवला टीकामें समन्तभद्रस्वामीके नामसहित दो अवतरण हमारे दृष्टिगोचर हुए हैं। इनमेंसे प्रथम पत्र ४९४ पर है। यथा--

'तहा समंतभद्दसामिणा वि उत्तं, विधिर्विषक्तप्रतिषेधरूप .....इत्यादि' यह श्लोक बृहत्स्वयम्भूस्तोत्रका है। दूसरा अवतरण पत्र ७०० पर है। यथा---

`तथा समंतभद्रस्वामिनाप्युक्तं,स्याव्दादप्रविभक्तार्थविशेषव्यंजको नय: ।'

यह आप्तमीमांसाके श्लोक १०६ का पूर्वार्ध है। और भी कुछ अवतरण केवल `उक्तं च` रूपसे आये हैं जो बृहत्स्वयम्भूस्तोत्रादि ग्रथोंमें मिलते हैं। पर हमें ऐसा कहीं कुछ अभी तक नहीं मिल सका जिससे उक्त टीकाका पता चलता। श्रुतावतारके 'असन्ध्यां पलरि' पाठमें संभवत: आचार्यके निवासस्थानका उल्लेख है,किन्तु पाठ अशुध्दसा होनेके कारण ठीक ज्ञात नही होता४। (देखो, पं. जुगलकिशोर मुख्तारकृत समन्तभद्र पृ.२१२)

जिनसेनाचार्यकृत हरिवंशपुराणमें समन्तभद्रनिर्मित `जीवसिध्दि`का उल्लेख आया है१( जीवसिद्धिविधायीह कृतयुक्त्यनुशासनम् । बच: समन्तभद्रस्य वीरस्येव विजृंभते ।। हरिवंशपुराण. १. ३०. ) , किंन्तु यह ग्रंथ अभीतक मिला नहीं है। कहीं यह समन्तभद्रकृत 'जीवट्ठाण' की टीकाका ही तो उल्लेख न हो? समन्तभद्रकृत गंधहस्तिमहाभाष्यकेभी उल्लेख मिलते हैं, जिनमें उसे तत्वार्थ या तत्वार्थसूत्रका व्याख्यान कहा है२। ( तत्वार्थसुत्रव्याख्यानगन्धहस्तिप्रवर्तक:। स्वामी समन्तभद्रोऽभूद्देवागमनिदेशक : ।। (हस्तिमल्ल. विक्रान्तकौरवनाटक , मा. ग्रं. मा.) तत्वार्थ-व्याख्यान-षण्णवति-सहस्त्र-गंधहस्ति-महाभाष्य-विधायक-देवागम-कवीश्वर-स्याद्वाद-विद्याधिपति-समन्तभद्र.....। (एक प्राचीन कन्नड ग्रन्थ, देखो समन्तभद्र. पृ. २२०) श्रीमत्तत्त्वार्थशास्त्रोद्भूतसलिलनिधेरिदवस्य । प्रोत्थानारम्भकाले सकलमलभिदे शास्त्रकारै : कृतं यत् ।) (विद्यानन्द. आप्तमीमांसा) ) इस परसे माना जाता है कि समन्तभद्रने यह भाष्य उमास्वसतिकृत तत्वार्थसुत्रपर लिखा होगा। किंतु यह संभव है कि उन उल्लेखोंका अभिप्राय समन्तभद्रकृत इन्ही सिध्दांतग्रंथोकी टीकासे हो। इन ग्रंन्थोकी भी `तत्वार्थमहाशास्त्र`नामसे

प्रसिध्दी रही है, क्योंकि,जैसा हम ऊपर कह आये हैं,तुम्बुलूराचार्यकृत इन्हीं ग्रंथोंकी `चूडामणि` टीकाको अकलंकदेवने तत्वार्थमहाशास्त्र व्याख्यान कहा है।

इन्द्रनन्दिने कहा है कि समन्तभद्र स्वामी द्वितीय सिध्दान्तकी भी टीका लिखनेवाले थे, किन्तु उनके एक सहधर्मिने उन्हें ऐसा करनेसे रोक दिया। उनके ऐसा करनेका कारण द्रव्यादिशुध्दि-करण-प्रयत्नका अभाव बतलायां गया है। (विलिखन् व्दितियसिध्दान्तस्य व्याख्यां सधर्मणा स्वेन। द्रव्यादिशुध्दिकरणप्रयत्नविरहात् प्रतिषिद्धम् ।।१७०।।इन्द्र. श्रुतावतार.) संभव है कि यहां समन्तभद्रकी उस भस्मकव्याधिकी ओर संकेत हो, जिसके कारण कहा गया है, कि उन्हे कुछ काल अपने मुनि आचारका अतिरेक करना पडा था। उनके इन्ही भावों और शरीरकी अवस्थाको उनके सहधर्मीने व्दितीय सिध्दान्त ग्रंथकी टीका लिखनेमें अनुकूल न देख उन्हें रोक दिया हो।

यदि समन्तभद्रकृत टीका संस्कृतमें लिखी गई थी और वीरसेनाचार्यके समय तक,विद्यमान थी तो उसका धवला जयधवलामें उल्लेख न पाया जाना बडे आश्चर्यकी बात होगी।

५. बप्पदेव गुरूकृत व्याख्याप्रज्ञप्ति

सिध्दान्तग्रंथोका व्याख्यानक्रम गुरू -परम्परसे चलता रहा। इसी परम्परामें शुभनन्दि और रविनन्दि नामके दो मुनि हुए,जो अत्यन्त तीक्ष्णबुध्दी थे। उनसे बप्पदेवगुरूने वह समस्त सिध्दान्त विशेषरूपसे सीखा। वह व्याख्यान भीमरथी और कृष्णमेख नदियोंके बीचके प्रदेशमें उत्कलिका ग्रामके समीप मगणवल्ली ग्राममें हुआ था। भीमरथि कृष्णा नदीकी शाखा है और इनके बीचका प्रदेश अब बेलगांव और धारवाड कहलाता है। वहीं यह बप्पदेव गुरूका सिध्दान्त-अध्ययन हुआ होगा। इस अध्ययनके पश्चात् उन्होंने महाबन्धको छोड शेष पांच खंडोपर `व्याख्याप्रज्ञप्ति` नामकी टीका लिखी। तत्पश्चात् उन्होंने छठे खण्डकी संक्षेपमें व्याख्या लिखी। इस प्रकार छहों खंडोंके निष्पन्न हो जानेके पश्चात् उन्होंने कषायप्राभृतकी भी टीका रची। उक्त पांच खंडों और कषायप्राभृतकी टीकाका परिमाण साठ हजार, और महाबंधकी टीकाका 'पांच अधिक आठ हजार ' था, और इस सब रचनाकी भाषा प्राकृत थी१। (एवं व्याख्यानक्रममवाप्तवान् परमगुरुपरम्पराया । आगच्छन् सिध्दान्तो द्विविधोऽप्यतिनिशितबुध्दिभ्याम् ।।१७१।। शिभ-रवि-नन्दिमुनिभ्यां भीमरथि-कृष्णमेखयो:सरितो:। मध्यमविषये रमणीयोत्कलिकाग्रामसामीप्यम् ।।१७२।। विख्यातमगणवल्लीग्रामेऽथ विशेषरूपेण । श्रुत्वा तयोश्च पार्श्वे तमशेषं बप्पदेवगुरू: ।।१७३।।

अपनीय महाबन्धं षट्खण्डाच्छेषपंचखंडे तु । व्याख्याप्रज्ञप्तिं च षष्टं खंडं च तत :संक्षिप्य ।।१७४।। षण्णां खंडानामिति निष्पन्नानां तथा कषायाख्य-प्राभृतकस्य च षष्ठिसहस्त्रग्रन्थप्रमाणयुताम् ।।१७५।। व्यलिखत्प्राकृतभाषारू पां सम्यक्पुरातनव्याख्याम्। अष्टसहस्त्रग्रंथां व्याख्यां पञ्चाधिकां महाबंधे ।।१७६।। इन्द्र. श्रुतावतार.)

धवलामें व्याख्याप्रज्ञप्तिके दो उल्लेख हमारी दृष्टिमें आये हैं। एक स्थानपर उसके अवतरण व्दारा टीकाकारने अपने मतकी पुष्टि की है। यथा--

लोगो वादपदिट्ठिदो त्ति वियाहपण्णत्तिवयणादो (ध.१४३)

दूसरे स्थानपर उससे अपने मतका विरोध दिखाया है और कहा है कि आचार्य भेदसे वह भिन्न-मान्यताको लिए हुए है और इसलिये उसका हमारे मतसे ऐक्य नहीं है। यथा--

`एदेण वियाहपण्णत्तिसुत्तेण सह कधं ण विरोहो? ण,एदम्हादो तस्स पुधसुदस्स आयरियभेएण भेदमावण्णस्स एयत्ताभावादो (ध.८०८)

इस प्रकारके स्पष्ट मतभेदसे तथा उसके सूत्र कहे जानेसे इस व्याख्याप्रज्ञप्तिको इन सिध्दान्त ग्रथोंकी टीका माननेमें आशंका उत्पन्न हो सकती है। किन्तु जयधवलामें एक स्थानपर लेखकने बप्पदेवका नाम लेकर उनकेऔर अपने बीचकेमतभेदको बतलाया है। यथा--

चुण्णिसुत्तम्मि बप्पदेवाइरियलिहिदुच्चारणाए अंतोमुहुत्तमिदि भणिदो। अम्हेहि लिहिदुच्चरणाए पुण जह० एगसमओ, उक्क० संखेज्जा समया त्ति परूविदो (जयध० १८५)

इन अवतरणोंसे बप्पदेव और उनकी टीका `व्याख्याप्रज्ञप्ति` का अस्तित्व सिध्द होता है। धवलाकार वीरसेनाचार्यकेपरिचयमें हम कह ही आये हैं कि इन्दनन्द्रिकेअनुसार उन्होंने व्याख्याप्रज्ञ ाप्तिको पाकर ही अपनी टीका लिखना प्रारम्भ किया था।

उक्त पांच टीकाए षट्खंडागमकेपुस्तकारूढ होनेकेकाल (विक्रमकी २ री शताब्दि )से धवलाके रचना काल (विक्रमकी ९वी शताब्दि) तक रची गई जिसकेअनुसार स्थूल मानसे कुन्दकुन्द दूसरी शताब्दीमें, शामकुंड तीसरीमें, तुम्बुलूर चौथीमें, समन्तभद्र पांचवीमें और बप्पदेव छठवी और आठवीं शताब्दीकेबीच अनुमान किया जा सकता हैं।

प्रश्न हो सकता है कि ये सब टीकाएं कहां गई और उनका पठन-पाठनरूपसे प्रचार क्यों विच्छिन्न हो गया ? हम धवलाकारके परिचयमें ऊपर कह ही आये हैं कि उन्होंने, उनके शिष्य

जिनसेनके शब्दोंमें, चिरकालीन पुस्तकोंका गौरव बढाया और इस कार्यमें वे अपनेसे पूर्वके समस्त पुस्तक-शिष्योंसे बढ गये। जान पडता है कि इसी टीकाके प्रभावमें उक्त सब प्राचीन टीकाओंका प्रचार रूक गया। वीरसेनाचार्यने अपनी टीकाके विस्तार व विषयके पूर्ण परिचय तथा पूर्वमान्यताओं व मतभेदोंके संग्रह, आलोचन व मंथनव्दारा उन पूर्ववती टीकाओंको पाठकोंकी दृष्टिसे ओझल कर दिया। किन्तु स्वयं यह वीरसेनीया टीका भी उसी प्रकारके अन्धकारमें पडनेसे अपनेको नहीं बचा सकी। नेमिचंन्द्र सिध्दान्तचक्रवर्तीने इसका पूरा सार लेकर संक्षेपमें सरल और सुस्पष्टरूपसे गोम्मटसारकी रचना कर दी,जिससे इस टीकाका भी पठन-पाठन प्रचार रूक गया। यह बात इसीसे सिध्द है कि गत सात-आठ शताब्दिओंमें इसका कोई साहित्यिक उपयोग हुआ नहीं जान पडता और इसकी एकमात्र प्रति पूजाकी वस्तु बनकर तालोंमें बंन्द पडी रही। किन्तु यह असंभव नहीं है कि पूर्वकी टीकाओंकी प्रतियां अभी भी दक्षिणके किसी शास्त्रभंडारमें पडी हुई प्रकाशकी बाट जोह रही हों। दक्षिणमे पुस्तकें ताडपत्रोंपर लिखी जाती थी और ताडपत्र जल्दी क्षीण नहीं होते। साहित्यप्रेमियोंको दक्षिणप्रान्तके भण्डारोंकी इस दृष्टिसे भी खोजबीन करते रहना चाहिए।